निबन्ध संग्रह 3

प्रताप नारायण मिश्र

निबंध-3

प्रतापनारायण मिश्र

भूमिका

न्याय	3
पुराण समझने को समझ चाहिए	5
पुलिस की निंदा क्यों की जाती है?	9
पेट	12
पौराणिक गूढ़ार्थ	15
प्रतिष्ठा केवल प्रेमदेव की है	28
प्रश्नोत्तर	32
बात	36
बाल्यविवाह विषयक एक चोज	40

न्याय

सवार साहब तो घोड़े की पीठ पर चढ़ें, उसे कोड़ा मारें, पाँव से एँड़ मारें, मुँह में लगाम लगावें, जब चाहें तब बाँधें, जब चाहें तब दौड़ावें, पर यह कोई न कहेगा कि सवार कठोर हृदय है, अन्यायी है। हाँ, यदि घोड़ा कहीं लात फटकार दे या काट खाए या सवार को पटक दे तो सबके मुँह से सुन लीजिए, घोड़ा बदलगाम है, कटहा है, लतहा है। वाह रे न्याय! सिंह व्याघ्र इत्यादि बलवान जीव होते हैं। वे जैसे हरिणादि को मार गिराते हैं वैसे ही कभी-कभी मनुष्य पर भी चोट कर देते हैं, इसलिए वे दुष्ट जंतु हैं। उनको मार डालना पाप नहीं है, बहादुरी है। पर मनुष्य महाशय बकरा मार खायँ, मछली हजम कर जायँ, चिड़ियों को भोग लगा जायँ, यह कहने वाला कोई न हो कि निर्दयी हैं।

वाह रे इंसाफ! यदि नौकर बिचारा कोई वस्तु उठाना भूल जाय और मालिक साहब ठोकर खा के गिर पड़े तौ फरमावेंगे, 'अंधा है, नालायक है, चीज को ठीक ठौर पर नहीं रखता, पैर तोड़ डाला'। पर जो कहीं मालिक साहब की वैसी ही असावधानता से नौकर ठोकर खा जाय तो भी आप यह न कहेंगे कि 'भाई हमें क्षमा करो, हमारी गफलत से तुम्हें चोट लग गई। बरंच झुँझला के कहेंगे, अंधा है, देख के नहीं चलता।' कहाँ तक कहिए, यदि हम कभी दुःख पा के, झुँझला के ईश्वर को कोई बात भी कह बैठे तो मूरख, नास्तिक, पापी इत्यादि की पदवी पावें और आप हमारे बाप, भाई, बंधु, बांधव, इष्ट मित्रादि का वियोग करा दें। धन, मान, आरोग्य अथवा प्राण तक हर लें तौ भी हमारे ही कर्मों का फल है।

वुह तो जो करेंगे हमारे भले ही को करेंगे। ऐसे-ऐसे लाखों उदाहरण सब काल, सब ठौर में मिला करते हैं जिससे हम ऐसे मुँहफट्टों का सिद्धांत हो गया है कि न्याय या इंसाफ या जसटिस एक शब्द मात्र है, जो खुशामदी लोग समर्थ व्यक्तियों के लिए कहा करते हैं। वास्तव में क्या न्याय, क्या दया, क्या वात्सल्य, सब प्रेमस्वरूप परमात्मा के गुण हैं,

मनुष्य बिचारा उनका हठ कहाँ तक करेगा? महाराज भरत (जिन्होंने प्रजा को सताने के अपराध में अपने नौ लड़कों का सिर काट लिया था), बादशाह नौशेरवाँ (जिन्होंने एक बुढ़िया की फरियाद पर अपने पुत्र के बध की आज्ञा दी थी) इत्यादि नाम केवल उपमा के लिए हैं। यदि लोग कभी हुए भी हों तो उन्हें हम संसारियों में नहीं गिन सकते।

जगत की रीति यही है कि यदि आप असमर्थ हैं तो दूसरों को न्यायी धर्मात्मा गरीबपरवर बना के अपना मतलब गाँठते रहिए। यदि कभी परमेश्वर की दया, नसीबे के जोर या हिम्मत की चाल इत्यादि से आप भी कुछ हो जाइएगा तो हम लोग इन्हीं विशेषणों के साथ आपका नाम लिखा और कहा करेंगे। यकीन है यह शब्द धरती की पीठ पर इसी भाँति धारा प्रवाह रीति से बना रहा है वैसे ही बना रहेगा। यदि सचमुच न्याय कोई वस्तु है और उसको साक्षी देके हमसे पूछिए तो उत्तर यही पाइएगा कि सबके इतिहास देख डाले, सिद्धांत केवल यह निकला कि दुनिया अपने मतलब की है। उस मतलब के लिए जहाँ और बहुत बातें हैं, एक यह भी सही। मतलब निकलने में कोई अड़चन न पड़े तब तक आप मुझको कहते रहिए, मैं आपसे कहता रहूँगा कि न्याय के विरुद्ध चलना ठीक नहीं है।

इंसाफ को छोड़ना दुरुस्त नहीं है। पर जो कोई पुरुषरत्न अपने हानि लाभ, मानापमान, जीवन-मरण, सुख दुःख इत्यादि की पर्वा न करके, कठिन परीक्षा के समय, न्याय का साथ देता रहे उसे हम मनुष्य तो कह नहीं सकते, हाँ, देवता बरंच ईश्वरीयगुणविशिष्ट कहेंगे!

पुराण समझने को समझ चाहिए

इस शताब्दी के लोगों की समझ में यह बड़ा भारी रोग लग गया है कि जिन विषयों का उन्हें तनिक भी ज्ञान नहीं है उनमें भी स्वतंत्रता और निर्लजतापूर्वक राय देने में संकोच नहीं करते। विशेषत: जिन्होंने थोड़ी बहुत अंगेरजी पढ़ी है अथवा पढ़नेवालों के साथ हेलमेल रखते हैं वा किसी नए मत की सभा में आते-जाते रहते हैं उनमें यह धृष्टता का रोग इतना बढ़ा हुआ दिखाई देता है कि जहाँ किसी अपनी सी बतीयत वाले की शह पाई वहीं जो बात नहीं जानते उसमें भी चायं-चायं मचाना आरंभ कर देते हैं। बरंच भली प्रकार जानने वालों से भी विरुद्ध वाद ठानने में आगा पीछा नहीं करते। यह हमने माना कि पढ़ने से और पढ़े लिखों की संगति से मनुष्य की बुद्धि तीव्र होती है किंतु इस के साथ यह नियम नहीं है कि एक भाषा वा एक विद्या सीखने से सभी भाषाओं और विद्याओं का पूर्ण बोध हो जाता हो। देखने से इसके विरुद्ध यहाँ तक देख पड़ता है कि एक ही विषय का यदि एक अंग आता हो तो दूसरा अंग सीखे बिना नहीं आता। साहित्य में जो लोग गद्य बहुत अच्छा लिखते हैं उन्हें भी पद्य रचना सीखनी पड़ती है और जिन्हें छंदोनिर्माण में बहुत अच्छा अभ्यास होता है वे भी गद्य लिखना चाहें तो बिना परिश्रम नहीं लिख सकते। दृश्यकाव्य के सुलेखक श्रव्यकाव्य में और श्रव्यकाव्य के सुलेखक हृदयकाव्य में सहसा प्रवेश कभी नहीं करते यद्यपि सब साहित्य ही के अंग हैं। फिर हम नहीं जानते हमारे नौसिखिया बाबू लोग क्यों बिना जानी बातों में टँगड़ी अड़ा के हास्यापद बनने में धावमान रहा रकते हैं। उनके इस साहस का फल सिवा इसके और क्या हो सकता है कि जिस विषय में वे ऐसी बैलच्छि करते हैं उसके तत्ववेत्ता लोग उन्हें हँसै थूकैं वा अपने जी में कुढ़ के रह जायँ और इतर जन धोखा खा के सच झूठ का निर्णय न कर सकें। विचार कर देखिए तो यह भी देश का बड़ा भारी दुर्भाग्य है कि पढ़े लिखे लोग ऐसा अनर्थ कर रहे हैं जिससे आगे होने वाली पीढ़ी के पक्ष में भ्रमग्रस्त होकर बड़े भारी अनिष्ठ की संभावना है। सरकार में हमें स्वतंत्रता क्या इसलिए दी है हम ढिठाई सहित अपनी मूर्खता का पक्ष करके देशभाइयों की बुद्धि को भ्रष्ट करें? हमारे संस्कृत

एवं भाषा के प्रसिद्ध विद्वानों को उचित है कि इस प्रकार के निरंकुश लोगों को रोकने का यत्न करें जिसका उपाय हमारी समझ में यह उत्तम होगा कि इस प्रकार के अनगढ़ स्तंत्राचारियों को अपने-अपने नगरों में किसी प्रतिष्ठित सज्जन व राजपुरुष की सहायता लेकर और सर्वसाधारण को समझा कर लेक्चर न देने दिया करें और ऐसों के पुत्र पुस्तकादि का प्रचार रोकने के लिए अपने हेती व्यवहारियों को समय-समय पर समझाते रहा करें। यदि संभव हो तो जाति के मुखियों को इन्हें जातीय दंड देने में भी उत्तेजित करते रहे नहीं तो यह मनमुखी लोग धर्म और देशभक्ति की आड़ में भारत को गारत करने में कसर न करेंगे। इन्हें हम यह तो नहीं कह सकते कि देश और जाति से आंतरिक बैर रखते हैं पर इतना अवश्य कहेंगे कि कोई सामाजिक भय न देखकर स्वतंत्रचित्तता को उमंग में आकर, नामवरी आदि के लालच से, बिना समझे बूझे केवल अपनी थोड़ी-सी बुद्धि और विद्या का सहारा ले के हमारे पूर्वजों की उत्मोतम रीति, नीति, विद्या, सभ्यतादि को दूषित ठहरा के सर्वसाधारण के मन में भ्रमोत्पादन करते रहते हैं। अत: यह निरक्षर स्त्रियों और अपठित ग्रामवासियों से भी अधिक मूर्ख है क्योंकि हमारी स्त्रियाँ और गंवार भाई और कुछ समझें वा न समझें पर इतना अवश्य समझते हैं कि हमारे पुरखे मूर्ख न थे। हमारी समझ में उनकी बातें आवैं वा न आवैं किंतु हमारा भला उन्हीं की चाल चलने में है। इस पवित्र समझ की बदौलत यदि अधिक नहीं तो इतना देश का हित अवश्य हो रहा है कि ग्रामों में और घरों के भीतर हमारी सनातनी मर्यादा आज भी बहुत कुछ बनी हुई है। किंतु बाबू साहबों को सभाओं, लेक्चरों, पुस्तकों और पत्रों में जहाँ ईश्वर, धर्म और दो हितैषितादि ही के गीत बहुतायत से गाए जाते हैं वहाँ भी आर्यत्व की सूरत कोट ही बूट पहिने हुए देख पड़ती है। फिर क्यों न कहिए कि इन देशोद्धारकों को पूर्ण प्रयत्न के साथ रोकना चाहिए जो पढ़ लिखकर भी इतना नहीं समझते कि सहस्त्रों रिषियों की, सहस्त्रों वर्ष के परिश्रमोपरांत स्थिर की हुई, पुस्तकें तथा मर्यादा, जिन्हें सहस्त्रों वर्ष से विद्वान मानते चले आए हैं, वह केवल थोड़े से विदेशियों तथा विदेशीय ढर्रे पर चलने वाले स्वदेशियों को समझ में न आने से क्योंकर दूषणीय और त्याज्य हो सकती है। जब हम देखते हैं कि दूसरे देश वाले कैसे ही क्यों न हो जाएँ किंतु अपनी भाषा, भोजन, भेष,